आधुनिक विज्ञापन यह प्रदर्शित करते हैं कि औरतें रात दिन अपने शरीर और चेहरे की सुन्दरता बढ़ाने के बारे में सोचती रहती हैं। ये विज्ञापन 'नारीत्व' के गुणों को रमणीयता, शर्मीलापन और साज-सिंगार के रूप में ही परिभाषित करते हैं। क्या 'मोहक' होना ही असली औरत होना है?

विज्ञापनों में स्त्रियों का दुरुपयोग

उद्योग और विज्ञापन एजेन्सियां कामुक विज्ञापनों का प्रयोग बड़े आम तरीके से करती हैं और स्त्रियों की कीमत पर भारी मुनाफ़ा कमाती हैं। कामुक विज्ञापन वह है जो आधी मनुष्य जाति को घटिया रूप में दर्शाता है। यह भेदभावपूर्ण है, यह एक लिंग की तुलना में दूसरे को नीचा गिराता है, शर्मिन्दा करता है। इस प्रकार के विज्ञापन पश्चिमी पुरुष संस्कृति को जारी रखने का बड़ा अच्छा साधन बन गये हैं तथा एक स्त्री के यौनाकर्षण और शारीरिकता का शोषण करते हैं। 'पुरुष स्त्रियों को मुख्य रूप से कामपूर्ति का साधन समझते हैं। पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की अधिक सजावटी भूमिका से यह बात स्पष्ट हो जाती है। स्त्री पुरुष मनोरंजक गतिविधियों में भाग लेते हुए दिखाए जाते हैं न कि मिलकर काम करते हुए। स्त्रियों को कामकाजी भूमिका में बहुत कम दर्शाया जाता है, इस सबसे स्त्री के सजावटी रूप को बढ़ावा मिलता है।'

स्त्रियों के अधिकांश चित्र इस प्रकार खींचे जाते हैं कि वे 'सजावटी गुड़िया' या मात्र पुतली सी दिखाई देती हैं जबकि पुरुष गंभीर विचार मुद्रा में दिखाए जाते हैं मानो कोई बौद्धिक प्रक्रिया में मशगूल हों। स्थानीय जनसम्पर्क माध्यम भी इससे कुछ भिन्न नहीं हैं। हमारे विज्ञापनों में स्त्रियां लगातार बनावटी, लुभानेवाली, कामवापसना का साधन, बुद्धिहीन तथा हर समय प्रशंसा चाहने वाली तथा घर व रसोईघर के लायक ही दिखाई जाती हैं। ऐसे अनेक विज्ञापन हैं जहां अधनंगी स्त्रियां मोटर साइकिल, कार, रेडियों का विज्ञापन करती दिखाई जाती हैं। ऐसे उत्पादन जिनका विज्ञापन में दिखाए गए नारी शरीर से कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

एक वस्तु के रूप में नारी शरीर का यह व्यापारीकरण (जहां वह पुरुष की लोलुप दृष्टि द्वारा उपभोग किए जाने का समान भर है) कहीं भी इतने अधिक स्पष्ट रूप में नहीं देखा जा सकता जितना कि जिस्म दिखाती, अपनी ओर बुलाती दृष्टि वाली, अर्धनग्न औरतों की तस्वीरों के साथ सिगरेट, ट्रैक्टर, रंग और मशीनों के विज्ञापनों के कैलण्डरों में। ज्यों ही वर्ष का अन्त नज़दीक आता है अनेक बड़ी कम्पनियां अपने बंधे ग्राहकों को देने के लिए इस प्रकार के कैलेण्डर तैयार करवाती हैं। आजकल तो कैलेण्डर बनाने वाले कभी-कभी कुछ ख़ास पेशकश भी करते हैं जैसेकि हर पृष्ठ पर एक दिल लुभाने वाली औरत और उसके साथ ही विज्ञापित वस्तु मंगवाने का आर्डर फॉर्म भी।

स्थानीय परिस्थितयों में स्थानीय स्त्रियों को प्रदर्शित करने के पीछे एक छिपी भावना काम करती है जिसके अनुसार स्थानीय औरतें कामपूर्ति का साधन है। इस प्रकार से स्थानीय पुरुषों की नज़र और दिमाग में विचार घर कर जाता है कि स्थानीय औरतें उन्हें यौन सुख व सन्तोष देने वाली है परिणाम यह है कि औरतों पर होने वाली यौन हिंसा की घटनाएं लगातार बढ़ रही हैं। रूप अनेक हैं– सड़क छाप छींटाकशी से लेकर बलात्कार जैसी अनहोनी तक।

स्त्रियों का इस प्रकार का चित्रण मानवीयता के विरुद्ध और शर्मनाक है। क्या यह स्त्री शरीर का सौदा करने का ज़रा परिष्कृत रूप नहीं है? स्त्रियों का इतना घटिया चित्रण औरतों को मात्र खेल का सामान समझने के पुरुष रवैये को मज़बूत करता है।

स्त्रियों का इस्तेमाल करने वाले विज्ञापन प्रायः दो श्रेणियों में आते हैं। एक-वे जो उनका इस्तेमाल यौनवस्तु के रूप में करते हैं तथा दूसरे जो उनकी जगह घर और रसोईघर में मानकर रूढ़िवादी चित्र प्रस्तुत करते हैं।

जबकि विज्ञापनों में पुरुष सफल पेशेवर, महत्वपूर्ण निर्णयकर्ता के रूप में चित्रित किए जाते हैं स्त्रियां गृहणी के रूप में दिखाई जाती हैं जो चावल कुकर, कपड़े धोने या सीने की मशीनें, फर्श चकमाकने के पॉलिश तथा घरेलू कीड़ेमार दवाइयों के साथ व्यस्त और प्रसन्न दिखती हैं। पुरुष शायद ही कभी घर के काम में हाथ बटाते दिखते हैं जबकि औरतें सबसे नये घरेलू साधनों के साथ गर्व और खुशी से फूली नहीं समातीं दिखाई जाती हैं मानो कह रही हों कि घर गृहस्थी ही स्त्री की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी है।

इस प्रकार के विज्ञापन इस सत्य को पूरी तौर पर नकार देते हैं कि आज औरतें कहीं अधिक संख्या में अपने घरों से बाहर निकलकर विभिन्न कामकाज और गतिविधियों में भाग ले रही हैं। पुरुषों को भी घरेलू काम में बराबर का हाथ बंटाना चाहिए– इस भावना के प्रति लोगों में स्वीकृति बढ़ रही है परन्तु विज्ञापनों में इसका सर्वथा अभाव है।

विज्ञापनों में अपने विकृत चित्रण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाना महिलाओं का अधिकार ही नहीं उनकी नैतिक ज़िम्मेदारी भी है। तभी महिलाओं पर होने वाली हिंसा और अन्याय का रुख भी बदला जा सकता है।

बालक मन पर असर

इस प्रकार के विज्ञापनों के असर से बच्चे भी बचे हुए नहीं हैं। लड़के सदा अपने कपड़े मैले करते रहते हैं (चिन्ता की कोई बात नहीं मां उन्हें धोकर फिर से झकाझक कर देगी।) बाहर कैम्प लगाकर रहते हैं, खेलकूद या दौड़भाग की गतिविधियों में लगे रहते हैं। लड़कियां सदा पियानो बजाती, नाचती या गुड़ियों को सजाती अथवा 'मसाक मसाक' (घर-घर) खेलती हैं। वे नाजुक हैं, स्त्री सुलभ हैं। बच्चों के इन क्रियाकलापों का बड़ा दूरगामी प्रभाव पड़ता है। जो वयस्क होने पर उनके व्यवहार में प्रतिफलित होता है। इस प्रकार से लड़के पिता के साथ अपनी पहचान बनाते हैं जिसने उनके लिए सब कुछ किया है, जो ताकतवर, भरोसेमंद और चतुर है। लड़कियां मां के साथ अपनी पहचान बनाती हैं और अपने आपको उसी रूप में ढालती हैं, प्रेममयी, त्यागशील तथा घर परिवार के लिए पूर्णरूप से समर्पित दासी।

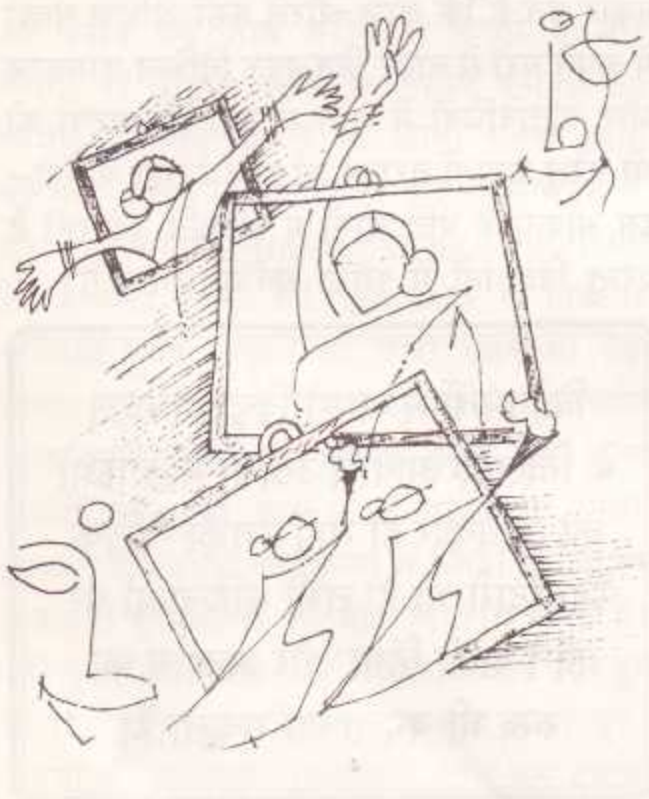

सीमित चित्रण

इसके अतिरिक्त अधिकांश विज्ञापनों में स्त्रियों का चित्रण कम अक्ल, मूर्खा के रूप में होता है जो समाज में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के सन्दर्भ में सरासर अन्याय है। आज लगभग 1.2 करोड़ मलेशियाई औरतें उद्योग-धन्धों, कृषि पेशेवर व शैक्षणिक क्षेत्रों में काम कर रही हैं। इसके साथ ही वे गृहणी, खाना पकाने वाली, माता तथा पारिवारिक आय का प्रबन्ध और अधिकांश खरीददारी करने वाली, आर्थिक उपभोक्ता आदि बहुमुखी भूमिकाएं-निभाती हैं। इतनी विषम ज़िम्मेदारियों को अच्छी तरह पूरा कर पाने के लिए ये विज्ञापन हमें जैसा विश्वास दिलाना चाहते हैं स्त्रियां उससे निश्चय ही कहीं अधिक बुद्धिमती, भरोसेमंद और उपाय कुशल हैं। आधुनिक विज्ञापन यह भी प्रदर्शित करते हैं कि औरतें रात दिन अपने शरीर और चेहरे की सुन्दरता बढ़ाने के बारे में सोचती रहती हैं। ये विज्ञापन 'नारीत्व' के गुणों को रमणीयता, शर्मीलापन और साज-सिंगार के रूप में ही परिभाषित करते हैं। 'मोहक' होना ही असली औरत होना है।

अधिकांश आम औरतों पर इन प्रदर्शित छवियों का क्या प्रभाव पड़ता है? साधारण शक्ल सूरत की स्त्रियों में यह अनिवार्य रूप से एक गहरी हीन भावना, अपराध बोध और अधूरेपन का अहसास पैदा कर देती है। अतः हम अपनी बदसूरती को छिपाकर पर्दे या चमकीले मुखपृष्ठों की नायिकाओं सी दिखने की कोशिश करती हैं

तथा हममें से कुछ तो इसके लिए बेइन्तिहा धन भी खर्च करती हैं

एक सर्वेक्षण के अनुसार

काफ़ी कम वेतन पाने वाली कारखाने में लगी लड़कियां अपने स्वास्थ्य की कीमत पर, पौष्टिक भोजन पर बचत करके अपनी आय का एक बड़ा हिस्सा कपड़ों, जूतों और श्रृंगार के सामान पर खर्च कर देती हैं। इस प्रकार के झूठे वायदों में फंसाकर स्त्रियों को मूर्ख बनाया जाता है। उन्हें यह महसूस कराया जाता है कि इस प्रकार की सजावट और प्रसन्नता के सौदागर उनके असम्भव स्वप्नों को भी सच बनाने की शक्ति रखते हैं। इस मृगतृष्णा सी सुन्दरता को पाने के लिए हम चालढाल व लुभावनेपन के क्षेत्र में न केवल एक दूसरे से होड़ करती है बल्कि अपने वास्तविक महत्व और स्वयं अपने आप में विश्वास खो बैठती हैं।

औरतों की स्वछवि और उनके नारीत्व को ललचा कर किस प्रकार से वासनात्मक बाज़ार सजाया जाता है यह एक विक्रय कर्मचारी के शब्दों में सबसे अच्छी तरह प्रकट होता है: 'यदि आप चालबाज़ी शब्द से घबराते न हों तो इसके थोड़े से इस्तेमाल से गृहणियों को एक पहचान, सृजनात्मकता, आत्मबोध यहां तक कि यौनान्द जो उन्होंने कभी अनुभव नहीं किया है, खरीददारी के माध्यम से सुलभ कराया जा सकता है।'

जनसंपर्क माध्यम

हमारे उपभोक्ता समाज में स्त्रियों को किस नज़र से देखा जाता है, जनसम्पर्क माध्यमों में स्त्री का चित्रण उसी की प्रतिछवि है, जनसम्पर्क माध्यम स्त्रियों को घरेलू दासी और बुद्धिहीन कामोत्तेजक सजावट का सामान बनाने की चाल केवल साबुन और हेयर स्प्रे बेचने के लिए नहीं चलते बल्कि ये छवियां स्त्री को उसी रूप में प्रदर्शित करती हैं जिस रूप में लिंगवादी समाज के पुरुष उन्हें देखना चाहते हैं। जनसम्पर्क माध्यमों में चित्रित नारी छवि की सबसे बड़ी बुराई यह है कि वह लिंगवादी हालात को ज्यों का त्यों रखने की पोषक है।

इन तमाम बातों को मद्देनजर रखते हुए खुद महिलाओं को अपनी सोच बनानी होगी क्योंकि यह अपभोक्ताओं की चमकचौंध में हमारा ही दोहरा शोषण है– हमारे ही शरीर को इस्तेमाल करके हमें ही उसके शोषण चक्र में पीसा जा रहा है–यह समझना होगा और ऐसे प्रचार का विरोध करना होगा। □

साभार–
स्त्रियां और प्रचार माध्यम

बच्ची-बूढ़ी करे पुकार
बंद करो यौन-अत्याचार।